International Journal of Yogic, Human Movement and Sports Sciences 2018; 3(1): 23-25

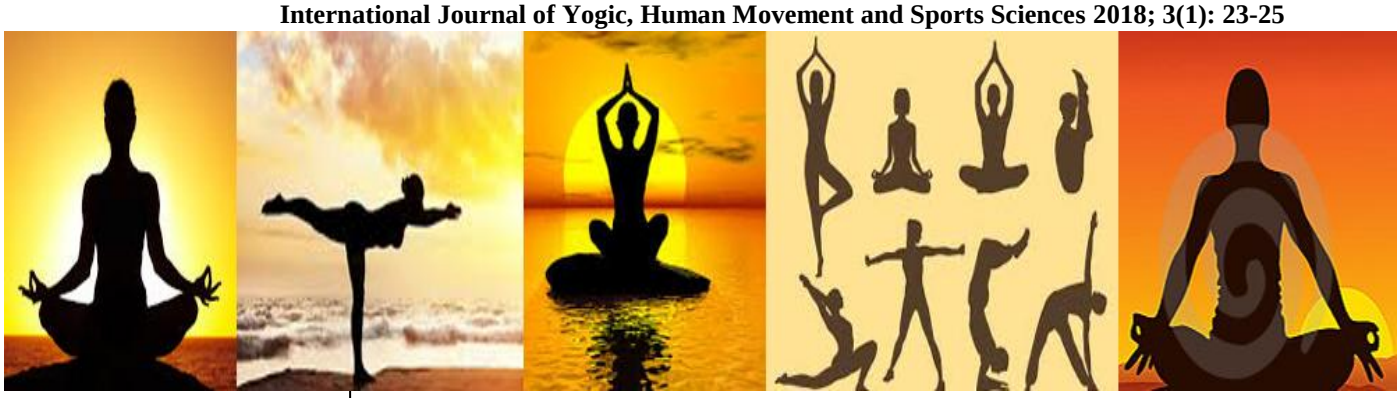

ISSN: 2456-4419
Impact Factor: (RJIF): 5.18
Yoga 2018; 3(1): 23-25
© 2018 Yoga
www.theyogicjournal.com
Received: 07-11-2017
Accepted: 08-12-2017

डॉ0 सुशीला कुमारी
सहायक प्रवक्ता, संस्कृत विभाग,
महिला महाविद्यालय, झोझू कलां,
चरखी दादरी, हरियाणा, भारत

Correspondence
डॉ0 सुशीला कुमारी
सहायक प्रवक्ता, संस्कृत विभाग,
महिला महाविद्यालय, झोझूकलां
(चरखीदादरी)

सर्वांगींण व्यक्तित्व विकासः योग के सन्दर्भ में

डॉ0 सुशीला कुमारी

प्रस्तावना

महर्षि पतञ्जलि ने योगशास्त्र का प्रारम्भ न करके बल्कि पूर्व से चले आ रहे प्रकीर्ण योग सिद्धान्तों को संकलित करने के पश्चात् उन्हें व्यवस्थित स्वरूप दिया है। याज्ञवल्क्य स्मृतिनुसार योगशास्त्र का आदिवक्ता हिरण्यगर्भ है।[1] अतः पतञ्जलि मुनि योग के प्रवर्त्तक न होकर केवल इसके अनुसंधानकर्ता, प्रचारक एवं संशोधक हैं। समाज में 'व्यक्तित्त्व' शब्द का प्रयोग शारीरिक सौन्दर्य के लिए किया जाता है। कुछ लोग व्यक्त्वि को अनेक गुणों का समावेश मानते हैं तो कुछ इसे जन्मजात मानते हैं किन्तु निष्कर्षतः यह स्वीकृत किया गया है कि व्यक्तित्व विचित्र एवं अर्थ सीमा में नहीं बंधा है।

मानवीय जीवन की सफलता एवं सार्थकता व्यक्तित्व के विकास पर ही आधारित होती है। यह निर्विवाद सत्य है कि योग व्यक्तित्त्व विकास के लिए मानव के समक्ष एक महत्वपूर्ण साधन के समान है भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता में 'कर्मों में कुशलता' (कर्मणिकुशलः) को योग कहा है। अतः योग व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए एक दिव्य औषधि है। यह मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, सामाजिक, आध्यात्मिक और भावात्मक आयामों का विकास करता हैं।

यह सर्वविदित है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। स्त्री–पुरूष इस समाज रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं। इन्हीं पर परिवार एवं समाज आधारित है इसलिए इनके विकास की भी परमावश्यकता हैं यथा–जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने गीता के उपदेश में कहा था कि 'मेरे लिए कोई ऐसा पदार्थ नही है जो मेरे लिए आवश्यक है और मुझे प्राप्त नही है फिर भी मैं कर्म में रत हूँ ओर यदि मैं सावधान होकर कर्म न करुँ तो हे पार्थ! सब लोग सभी प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करेंगें और कर्म करना ही छोड़ देगें।[2]

योग के अष्टांग हैं–यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार धारणा–ध्यान एवं समाधि।[3] इन्हीं पर मनुष्य का सर्वागींण विकास आधारित है। व्यक्तित्त्व विकास में शरीर के बाह्य एवं आन्तरिक आयामों का मूल योग ही है। जिस प्रकार अच्छा आहार शरीर को आन्तरिक एवं बाह्य रूप से सुदृढ़ एवं सुन्दर बनाता है उसी प्रकार योग भी मनुष्य को दोनों ही रूपों से विकास करता है। सामाजिक व्यक्तित्व का विकास योग के विभिन्न स्तरों से होता है, जैसे–योगशिविर लगाना, सेमिनार, मीडिया के द्वारा योग को प्रसारित करना तथा साहित्य का प्रचार–प्रसार करना इत्यादि। इससे समाज में एक नवीन चेतना का उदय होगा जो कि व्यक्ति के जीवन को परिवर्तित करने में अहम् भूमिका निभाता है। व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति की शक्ति में नैतिकता, नीति में आचार और कर्मों में चिन्तन–मग्न होता है जो कि व्यक्तित्व विकास की प्रमुख आधारशिला होती है।

आज आधुनिक समाज में व्यक्ति की आकांक्षाओं और आशाओं को योग के द्वारा समायोजित करने का उत्तरदायित्व बढ़ गया है। समाज महत्त्वाकांक्षी हो गया जिससे अनेकों समस्याएँ बढ़ रही है। समाज से परमार्थ एवं परोपकार की भावनाएँ विलुप्त होती जा रही हैं और स्वार्थ की भावनाएँ उत्पन्न हो रही है। आज के मनुष्य की जीवन सारणी जिस पथ की ओर अग्रसर हो रही है वह समाज में आए दिन नई–नई समस्याएँ पैदा कर रही है। योग द्वारा मनुष्य की भोगवादी प्रवृति को योगवादी तथा त्यागवादी प्रवृत्ति में बदला जा सकता है। इसमें महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग अति महत्त्वपूर्ण है। यह आधुनिक समाज में एक ज्ञान रूपी ज्योति प्रज्ज्वलित कर सकता है।[4] इसी प्रकार हठयोग में वर्णित षट्कर्म, आसन एवं प्राणायाम् हमारे समाज के व्यक्तियों में नैतिक जीवन व स्वास्थ्य रक्षा का भाव जागृत कर उनके व्यक्तित्व को सुदृढ़ एवं सुन्दर बनाता है।[5] जैसे धृति, क्षमा, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य एवं अक्रोध।[6] इनका पालन करने से समाज में जीवन मूल्यों का विकास होता है जो समाज को उन्नति के शिखर पर ले जाता है।

मनु के दस तथा महर्षि पतञ्जलि के आठ नियमों के अनुकरण से समाज में परिवर्तन हो सकता है क्योकि मनसा, वचसा एवं कर्मसा से प्राणी को किसी भी प्रकार से दुख न देना ही अहिंसा है।[7]

जब व्यक्ति सभी प्राणियों में एकत्व एवं समत्व की भावना रखता है और वह किसी से शोक, भेदभाव व मोह नहीं रखता है तो ऐसा व्यक्ति सर्वत्र शुभचिंतक व निर्भय होकर अपने सर्वागींण व्यक्तित्व को सर्वश्रेष्ठ बना लेता है। जब व्यक्ति जैसा सुना हो, देखा हो व बोला हो तदनुसार ही व्यवहार करता है, वह सत्य कहलाता है।[8] शतपथ में कहा भी है कि– जो असत्य एवं भय बोलता है वह अपवित्र है तथा उसका तेज रूपी व्यक्तित्व गुण स्वतः ही नष्ट हो जाता है जिसके कारण उसका मानसिक बल, वाणी का तेज तथा मुख की कान्ति क्षीण हो जाती है।[9] वह व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से अपयश की ओर अग्रसर हो जाता है। असत्यवादी व्यक्ति का व्यक्तित्व समाज के लिए कष्टकारी होता है क्योंकि उसकी समस्त घोषणाएँ झूठ का पुलिन्दा बन जाती हैं जिससे समाज में उसकी अवस्था पतित हो जाती है। अस्तेय को मनु एवं महर्षि पतञ्जलि दोनों ही महत्व देते हैं। बिना पूछे दूसरे की वस्तु को लेना अस्तेय है।[10] चोरी की प्रवृत्ति व्यक्ति तथा समाज के लिए घातक है इससे समाज में हिंसात्मक घटनाएँ होती है। ऐसा व्यक्ति हीनदृष्टि से देखा जाता है जिससे व्यक्तित्व की हानि होती है। मन, वचन, तथा कर्म से शरीरस्थ वीर्य की रक्षा करना ब्रह्मचर्य है।[11] मनु इसे इन्द्रियनिग्रह कहते हैं। काम, क्रोध तथा लोभ ये सभी इन्द्रियों के विकार हैं। इन्द्रियनिग्रह/ब्रह्मचर्य के पालन से से शारीरिक व मानसिक बल की वृद्धि होती है।

इससे आत्मविश्वास, प्रसन्नता तथा उत्साह की वृद्धि होती है। समाज में कामोत्तेजक वासनाएँ एवं बलात्कार आदि की घटनाएँ कम होकर स्वस्थ समाज का निर्माण होगा। धन–धान्य तथा भोग सामग्री का संग्रह न करना अपरिग्रह कहलाता है। यह यमों में अन्तिम है।[12] समाज की इसी संग्रहवादी प्रवृत्ति ने समाज में अनेक समस्याओं को जन्म दे दिया है। त्यागपूर्वक भोग की भावना का न होना[13] ही समाज में विघटन पैदा कर रहा है। अपरिग्रह के पालन से समाज में चोरबाजारी, भ्रष्टाचार एवं घूसखोरी आदि पर अंकुश लग सकता है। पूँजीवाद, समाजवाद तथा समाजवाद तथा साम्यवाद के झगड़े समाप्त होकर समाज सुदृढ़ तथा आदर्श बनता है।

सामाजिक व्यक्तित्त्व विकास में अष्टांग योग में वर्णित नियम भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।[14] नियम का अभिप्राय उस नैतिक तथा सामाजिक मर्यादा में जीवन यापन करना है जिसके अन्तर्गत तनावमुक्त जीवन व्यतीत किया जा सके और हमारे व्यक्तित्त्व का निर्माण हो सके। शौच का अर्थ है आन्तरिक व बाह्य पवित्रता।[15] शौच का अर्थ है–मन, बुद्धि तथा अन्तः करण के वृतिरूप राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा आदि अवगुणों को दया, करूणा, विनम्रता, क्षमा व मैत्री आदि उत्तम सद्गुणों द्वारा दूर करना। इससे व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को शुद्ध करके अपना सामाजिक व्यक्तित्त्व उन्नत कर सकता है। संतोष नाम 'तुष्टि' का है जिसका शाब्दिक अर्थ है मन, कर्म व वचन से अन्तःकरण में सन्तुष्टि का भाव होना।[16] प्रत्येक परिस्थिति में हमेशा प्रसन्नचित्त रहना ही सन्तोष है।[17] महर्षि व्यास कहते हैं कि 'संतोष सभी अमृत का पान करने से तृप्त हुए शान्तचित मनुष्य को जो आत्मिक शांति/सुख मिलता है वह धन की व्याकुलता में भटकने वाले मनुष्य को कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता।18 सन्तोष मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व का विकास करता है जिससे मनुष्य दिव्यता एवं महानता को प्राप्त करता है। इससे आनन्दमय कोष भी विकसित होता है।[19]

पौराणिक कथन है कि सोना तपकर ही कुन्दन बनता है। इसी प्रकार जो भी व्यक्ति या समाज जितना कर्तव्य पालन में कष्टों को सहन करता है उतना ही उसका व्यक्तित्व निखरता है क्योंकि तप का अनुष्ठान करने वाले को द्वन्द्व (कष्ट) सहन करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।[20] स्वाध्याय के अनुसार–'हमें अपने प्रतिदिन के कार्यों का प्रतिदिन ही निरीक्षण करना चाहिए कि मेरे कौन से कार्य पशुतुल्य हैं तथा कौन से कार्य मानवोचित हैं।[21] ऐसा करने से हम अपने व्यक्तित्व का उचित मूल्यांकन करके उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकते हैं। व्यक्ति में यदि स्वाध्याय की प्रवृति नहीं रहेगी तो वह अच्छे विचारों से दूर होकर बुरी प्रवृत्तियों में लग जाएगा। इसलिए वेदादि शास्त्रों तथा स्वयं का अध्ययन अत्यावश्यक है।[22] स्वाध्याय के द्वारा मनुष्य चाहे जिस भी वातावरण में भले ही रहे उसमें सद्विचारों का ही उदय होगा। योगभाष्यकार व्यास जी ने लिखा है कि सम्पूर्ण कर्मफलों के सहित समस्त कर्मों को परम गुरू परमेश्वर के निमित्त अर्पित कर देना ईश्वरप्रणिधान है।[23] ईश्वर प्रणिधन के द्वारा मानसिक एवं सामाजिक व्यक्तित्व को विघटित करने वाले अहंकार एवं संकीर्ण विचारधारा की विराट चेतना में विसर्जन हो जाता है जिससे अहंपरक मानसिक व्यक्तित्व चेतना का स्थान पराचेतना ले लेती है। इस स्थिति में हमारे सामाजिक व्यक्तित्व का गहनतम विकास होता है जिस समाज के व्यक्तियों में स्वार्थ भावना के स्थान पर परमार्थ भावना होगी तो वह समाज दीन–हीन न होकर दिव्य एवं कर्मठ होगा।

श्री के0 एस0 वी0 रमन 'हम और हमारा समाज' में लिखते हैं कि यद्यपि व्यक्ति को निजी स्वतन्तत्रता प्राप्त है किन्तु उसे यह अधिकार प्राप्त नही है कि वह दूसरों की स्वतन्त्रता का हनन करें।[24] महर्षि पतञ्जलि ने कहा है कि संसार में सभी प्रकार के लोग रहते हैं। उनमें से हमें किसी के साथ मैत्री तो किसी के साथ ईर्ष्या का भाव रहता है।[25] मनुष्य को सद्भावना का विचार रखना चाहिए ताकि मन व शरीर स्वच्छ एवं निर्मल बन सके जिसका रखना चाहिए। ताकि मन व शरीर स्वच्छ एवं निर्मल बन सके जिसका प्रभाव समाज के अन्य व्यक्तियों पर भी पड़ता है और समाज उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है।

निष्कर्षतः सर्वागीणं व्यक्तित्व विकास हेतु योगाभ्यास एक आवश्यक अंग है। आर्यसमाज का नियम है कि समाज का उपकार करना इस समाज का प्रमुख उद्येश्य है।[26] शारीरिक व्यक्तित्व का विकास बिना शारीरिक या आत्मिक विकास के सम्भव नही है। योग द्वारा व्यक्तिगत जीवन की उन्नति को समाज के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है अर्थात् व्यक्ति में जितने अच्छे गुण होगें समाज उतना ही उत्कृष्ट होता जाएगा। आज के युग में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति आगे निकलने की होड़ में दौड़ता है वहाँ समाज में घृणा/द्वेष का भाव उतना ही ज्यादा होता है। इन सभी द्वेष भावनाओं से छुटकारा योग ही दिलवा सकता है। योग के द्वारा समाज में व्याप्त बुराइयों जैसे–चोरी, झूठ, छल–कपट, हिसां एवं शास्त्र विरूद्ध कार्यों को दूर किया जा सकता है। सबसे महत्वपूर्ण चीज इच्छाएँ होती है। क्योंकि इच्छाएँ कभी भी पूर्ण नहीं हो सकती। एक के पूर्ण होते ही दूसरी स्वतः ही पनप जाती हैं। इस जीवन रूपी शत्रु का शमन व्यक्ति योग के द्वारा ही कर सकता है।[27] समाज का नियम है कि जिसने अपनी इच्छाओं पर काबू पा लिया मानो उसने सम्पूर्ण विश्व/समाज पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

समाज में सभी प्रकार के व्यक्ति रहते हैं उनमें अविद्या, अस्मिता, राग–द्वेष तथा अभिनिवेशादि पञ्च क्लेश होते हैं।[28] इन पञ्च क्लेशों का मूल कारण अविद्या ही है। योग ही इन सभी के निराकरण का उपाय 'क्रियायोग'[29] को बताता है। जब किसी व्यक्ति पर कोई आपत्ति आती है तो वह दुखी हो जाता है तथा वह हिंसात्मक कार्य कर उठता है। यदि मनुष्य तप का कठोरतापूर्वक पालन करेगा वह आने वाले दुखों का निराकरण कर सकेगा और अपने व्यक्तित्व का भी विकास कर सकेगा। अथर्ववेद में कहा गया है कि 'हे परमेश्वर!' हम जिस इच्छा से आपकी उपासना में रत हैं, आप हमें उसमें पूर्णता प्रदान करें। हमारे समस्त कार्य कर्मफल सहित आपको अर्पित हैं।'[30] यही ईश्वरप्रणिधान कहलाता है। इसके अनुसार व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व को विघटित एवं संकुचित करने वाले अहंकार एवं स्वार्थ भावना को परमात्मा की विराट् चेतना में विसर्जित कर देना चाहिए। ऐसा करने से अहंपरक चेतना का स्थान पराचेतना ले लेती है[31] और निष्कर्षतः व्यक्ति का सर्वागींण विकास हो जाता है।

निष्कर्षतः आधुनिक समाज की जो वर्तमान दशा है उसके लिए तो योग को अपनाना ही श्रेयस्कर है। सच कहें तो योगशिक्षा विषय

विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अनिवार्य विषय कर देना चाहिए। जहाँ समाज की अनेकों समस्याएँ कानून द्वारा सुलझाई जाती हैं वहीं दूसरी और शरीर की अनेकों समस्याएँ (शारीरिक एवं मानसिक बीमारियाँ) योग के द्वारा सुलझाई जा सकती है। यदि समाज का हरेक व्यक्ति योग ग्रन्थों में वर्णित बातों का पालन कर ले तो समस्याएँ बढ़ती तो दूर जन्म तक ही नहीं लेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. याज्ञवल्क्यस्मृति 12.5, महाभारत शान्तिपर्व 349.65.
2. न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन.....। गीता 3. 22–23
3. पातंजल योगसूत्र–31
4. पातंजल योगसूत्र–2.28–29
5. हठयोग–1.10–11.
6. धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
   धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। मनु0 6.92.
7. पातजंल योगसूत्र 2.35, वसिष्ठ धर्मसूत्र 1.39.
8. वसिष्ठ धर्मसूत्र–1.41
9. अमेध्य वा पुरूषो यदनृतं वदन्ति। शतपथ ब्राह्मण
10. योगसूत्र व्यासभाष्य –2.36, वसिष्ठ धर्मसूत्र 1.42.
11. योगसूत्र 2.38, वसिष्ठ धर्मसूत्र 1.43.
12. अपरिग्रहस्थैर्य जन्मकथन्तासम्बोध। पातजंल योगसूत्र 2.39.
13. तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः।। ईशोपनिषद्
14. पातजंल योगसूत्र 2.32.
15. योगसूत्र 2.40–41
16. सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः। योगसूत्र 2.42
17. वसिष्ठ धर्मसूत्र 1.55
18. व्यासभाष्य।
19. श्रीराम शर्मा आचार्य यमनियम, पृष्ठ 28.
20. कायेन्द्रिय सिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः।। योगसूत्र–2.43.
21. प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः.....। स्मृतिग्रन्थ
22. व्यासभाष्य–21, योगसूत्र 2.44, व्यासभाष्य 1.28
23. ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन् परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्।। योगसूत्र व्यासभाष्य–2.32.
24. श्री के0 एस0 वी0 रमन (हम और हमारा समाज)
25. पातजंल योगसूत्र 1.33.
26. आर्यसमाज का नियम नं0 6.
27. गीता – 2.64
28. अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः।। योगसूत्र 2.3
29. तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः।। योगसूत्र 2.1
30. योगवसिष्ठ, पृष्ठ 54
31. श्रीराम शर्मा आचार्य, यमनियम, पृष्ठ 28